International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: **3049-2017**
IJMH 2026; 3(2): 272-274
© 2026 IJMH
www.themultijournal.com

Received: 25-03-2026
Accepted: 13-04-2026
Publish : 14-04-2026

अनीता रानी
शोधार्थी,
संस्कृत विभाग,कला संकाय,
दयालबाग शिक्षण संस्थान,आगरा।

शोध निर्देशिका
डॉ. निशीथ गौड़
संस्कृत विभाग, कला संकाय,
दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा।

Correspondence:
अनीता रानी
शोधार्थी,
संस्कृत विभाग,कला संकाय,
दयालबाग शिक्षण संस्थान,आगरा।

'रक्त दोष' शाङ्र्गधर संहिता के विशेष संदर्भ में

अनीता रानी, डॉ. निशीथ गौड़

भारतीय आयुर्वेद परंपरा संसार की पुरातन चिकित्सा पद्धतियों में से एक है। इसके अंतर्गत बहुत से आयुर्वेदिक ग्रंथों का सृजन हुआ है, जिनमें शाङ्र्गधर संहिता का स्थान अति उत्तम है। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि यह भ भैषज्य (औषध) और व्यवहारिक चिकित्सा के लिए प्रसिद्ध है।

शाङ्गधर संहिता में चिकित्सा का वर्णन बहुत ही सरल एवं सहज भाषा में किया गया है ,ताकि यह जनमानस तक पहुंच सके।

कूट शब्द- रक्तदोष, त्रिदोष, प्रकृति, स्वस्थ, शरीर।

काल एवं सृजनकर्ता

प्रबुद्ध जनों के द्वारा शाङ्र्गधर संहिता का समय 13वीं 14वीं शताब्दी के मध्य माना गया है। यह ग्रंथ आचार्य शाङ्र्गधर द्वारा विरचित है। यह ग्रंथ तीन खण्डों में विभाजित है ।

प्रथम-पूर्वखंड

द्वितीय-मध्यखंड

तृतीय-उत्तरखण्ड

विविध दृष्टियों से प्रत्येक खंड का प्रमुख स्थान है, पूर्व खंड औषधि विज्ञान के सिद्धांतों को दर्शाता है एवं वीर्य, रस, विपाक, द्रव्यों के गुणादि को भी प्रस्तुत करता है। नाड़ी परीक्षा इस खंड की विशेषता है। जिसके अंतर्गत रोग की पहचान नाड़ी के माध्यम से किस प्रकार की जाए वह बताया गया है। नाड़ी की गति, बल एवं स्वरूप को आधार मानकर रुग्णता की प्रकृति को समझा जा सकता है।जिससे रोग को ठीक करने में आसानी मिलती है।

मध्य खंड औषध निर्माण की विधियों का विस्तार से वर्णन करता है।इस खंड में क्वाथ, आसव ,चूर्ण, अरिष्ट, घृत और तेलादि औषधीय का विधिगत निरूपण किया गया है।

उत्तरखंड रोग एवं उपचार को प्रदर्शित करता है, जिसमें अतिसार, कास, ज्वर, श्वास, त्वचा रोगादि के बारे में बताया गया है।

दोष शब्द की व्युत्पत्ति

'दोष' शब्द संस्कृत के मूल 'दुष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है दूषित करना।

दोष शब्द की परिभाषा

आयुर्वेद वांग्मय के अंतर्गत 'दोष' शब्द वात पित्त कफ के लिए प्रयुक्त किया जाता है वैसे दोष का सामान्य अर्थ 'विकार' है। शरीर को सहज रूप से दूषित करने की विशेषता रखने के कारण एवं स्वयं विकार ग्रस्त हो जाने की प्रवृत्ति के कारण वात पित्त और कफ का नाम दोष पड़ गया। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की अंतर्गत त्रिदोष चर्चा वार्ता में बताया गया है कि दोष संपूर्ण शरीर के उपचयात्मक एवं अपचयात्मक क्रियाओं को करने वाले हैं। वात, पित्त और कफ यह तीन दोष ही है जो नियामक एवं स्वतंत्र रूप से दूषणशील प्रतीत होते हैं वे वात, पित्त एवं कफ यह तीन दोष ही है और कोई नहीं।

विजयरक्षित जी द्वारा माधव निदान की मधुकोश टीका के अंतर्गत कहा गया है कि जिसमें प्रकृति निर्माण की क्षमता हो और जिसमें स्वतंत्रता पूर्वक देह को दूषित करने की प्रवृत्ति हो उसे 'दोष' कहा गया है।

शाङ्र्गधरानुसार 'दूषणाद्योषा' अर्थात जो शरीर को दूषित करे या स्वयं दूषित हो जाए उसे दोष कहते हैं। उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार 'रस रक्त' आदि धातुओं को भी दोष में शामिल किया जा सकता है। क्योंकि रक्त दूषित होकर शरीर को भी दूषित करता है। 'दोष' जब साम्यावस्था में होते हैं तब वह संस्थापक का तथा जब दोष वैषम्य अवस्था में होते हैं तो वह रोगजनक होते हैं इन्हीं कारणों से इन्हें दोष शब्द से संबोधित किया गया है ।संक्षेप में वात पित्त और कफ की समष्टि कर इन्हें दोष नाम दिया गया। शरीर में होने वाली क्रियाओं का जनक जो प्रकृति को पैदा करता है, रोगों को पैदा करने वाला विषय होता है। साम्यावस्था में स्वस्थ रखता है वह दोष है। वात, पित्त, कफ तीनों में यह लक्षण दिखते हैं। यर्थाथानुसार हम वात ,पित्त और कफ को ही दोष शब्द से संबोधित कर सकते हैं अन्य को नहीं।

दोष के प्रकार

शाङ्र्गधर के अनुसार दोष तीन माने गए हैं वात, पित्त और कफ।

ऋग्वेद में वात, पित्त और कफ के लिए 'त्रिधातु' शब्द प्रयुक्त हुआ है।(ऋग.1/34/6)

अथर्ववेदानुसार वात, पित्त और कफ के लिए अभ्र, वात एवं सुष्म शब्द प्रयुक्त हुए हैं। (अथर्व1/31/92)

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाःसमासतः (अष्टांग हृदयम सूत्र. अण अ. 1-6)

वायुः पित्तं कफश्चोक्त! शारीरोदोष संग्रहः (चरक सू० अ. 1-57)

काश्यप संहितानुसार- किमाभ्रइति वातपित्तकफाश्रय:।। (काश्यप सं विभाव स्थान पृ.43)

वात-पित्त और कफ शब्द की व्युत्पत्ति

आयुर्वेद में वात शब्द के के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग हुआ है जैसे पवन, वायु, अनिल आदि लेकिन ज्यादातर 'वात' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

'वा गतिगन्धनयोः' वा धातु से 'क्त' प्रत्यय द्वारा 'वात' शब्द बना। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो 'वा' धातु से 'तन' प्रत्यय और 'न' का लोप होने से 'वात' शब्द की व्युत्पत्ति हुई।

वा गतिगन्धनयोः वा धातु से 'उण्' प्रत्यय करके पाणिनी 'आतो युक् चिण् कृतोः' सूत्र से 'युक्' होता है। 'क' का लोप होकर 'वायु' शब्द बनता है। 'गतिगन्धनयोः' शब्द में गति का अर्थ ज्ञान, गमन एवं प्राप्ति है। अर्थात गति उत्पन्न करना शरीर के दोषों एवं धातुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाना, इन्द्रियों द्वारा विषय के ज्ञान की प्राप्ति आदि कार्य है। 'गन्धन' शब्द का अर्थ उत्साह माना है। उत्साह से मानसिक कर्मों को प्राप्त किया जा सकता है।

पित्त शब्द की व्युत्पत्ति –

पित्त शब्द 'तप सन्तापे' धातु से 'अच' प्रत्यय करके तत्पश्चात् वर्ण विपर्यय एवं 't' को द्वित्व हुआ।

'तप सन्तापे' जिसका अर्थ सन्ताप अर्थात् 'पीड़ित' से है। पित्त ताप उत्पन्न करने वाला है। शरीर में होने वाली क्रियाएँ ताप के कारण होती हैं, ताप पर प्रभाव पित्त के कारण होता है।

कफ शब्द की उत्पत्ति

कफ शब्द के लिए श्लेष्मा व बलास शब्द पर्यायवाची के रूप में कार्यान्वित होते हैं। श्लेषमा शब्द 'श्लिष आलिङने' धातु से मनिन प्रत्यय का प्रयोग करते हुए पुनः गुण करके संपादित हुआ है। कफ शब्द 'केन जलेन फलति' अर्थात जल महाभूत के संसर्ग में आकर द्रव्य वृद्धि को प्राप्त करते हैं। जिसे 'कफ' शब्द की संज्ञा दी गई है। कफ वह द्रव्य है, जो हमारे शरीर में एक कोष को दूसरे कोष से तथा अन्य स्थूल अवयवों को जोड़ने का कार्य करता है।

पंचमहाभूतों में त्रिदोष की उत्पत्ति

वात, पित्त और कफ की उत्पत्ति पांच महाभूतों से मानी गई है। आकाश और वायु तत्त्व से वात का सृजन हुआ है। जल और पृथ्वी से कफ एवं अग्नि से पित्त का आविर्भाव हुआ है।

काश्यप संहिता के अनुसार भी वात, पित्त और कफ के दो दो देवता बताए गए हैं। वात दोष के देवता वायु और आकाश को बताया गया है, पित्त दोष के देवता अग्नि और आदित्य को माना है। जल और पृथ्वी कफ दोष के देवता माने गए हैं। आयुर्वेद में शरीर का आरंभक तथा संचालक वात, पित्त और कफ को कहा गया है। शाङ्गध-रसंहिता में शारीर विज्ञान पुस्तक के अंतर्गत यह प्रश्न उठता है कि दोष तीन है लेकिन चौथा दोष 'रक्त' क्यों नहीं है ?

इस प्रश्न की समाधान हेतु आगे कहते हैं कि आयुर्वेद में त्रिदोष का ग्रहण बताया गया है। जिस प्रकार शरीर में त्रिदोष महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार रक्त भी महत्त्वपूर्ण धातु है। उसके बिना शरीर अस्थिर है।

शाङ्र्गधर के अनुसार रक्त हृदय से चलाएमान होता हुआ धमनियों एवं पूरे शरीर में संरक्षण करता है और धातुओं का पोषण करता है, इसलिए रक्त को जीव का श्रेष्ठ आधार बताया गया है अर्थात् रक्त क्षय होने से जीव की मृत्यु हो जाती है।

"रक्त सर्वशरीरस्यं जीवस्याधारंमुत्तमम।
स्निग्धं गुरुचलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्धवेत।।"

शाङ्र्गधर के दीपिका टीकाकार आढमज्ल भी इसकी पुष्टि करते हुए कहते हैं-

स्निग्धमरूक्षं, गुरु अलघु , चलं नैकत्रस्थितशीलं द्रवत्वात्।
स्वादु मधुरं स्व स्वाभावात यदा विदग्धं तदा पित्तवद्धवेत् इति ।

सुश्रुतानुसार रक्त भी त्रिदोष के समान है जिस प्रकार त्रिदोष स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय तीनों अवस्थाओं में उपस्थित रहता है, उसी प्रकार रक्त भी विद्यमान रहता है।

तदेभिरेव शोणितचतुर्थे: संभवस्थितिप्रलयेष्वप्य विरहितं शरीरं भवति।

देहस्य रुधिरं मूल रुधिरैणैव धार्यते।
तस्मादयत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः।।

शाङ्गधर ने जहां त्रिदोष से होने वाले रोगों की गणना की है, वहीं रक्त से होने वाले रोगों की भी गणना की है यथा- रक्त मंडल, रक्तनेत्र, रक्तनिष्ठीवन, रक्त मूत्रता आदि।

सुश्रुत संहिता के **'द्विव्रणीय चिकित्सा'** नामक अध्याय में व्रण रोग के भेद वातज, पित्तज और कफज के साथ ही रक्तज भेद का भी वर्णन किया गया है।

यूनानीमतानुसार दोष चार है- दम व खून, बलगम (श्लेष्मा या कफ), सफरा (पित्त) सौदा (वात)। इन चारों को परस्पर मिश्रित माना है। ये रक्त के साथ संपूर्ण शरीर में संचार करते हैं। साम्य अवस्था में साम्य कार्य और वैषम्य अवस्था में वैषम्य कार्य करते हैं सुश्रुत संहिता में 'व्रण प्रश्न' नामक अध्याय में भी रक्त के स्वरूप व स्थान के बारे में बताया गया है। शाङ्र्गधर संहिता में और सुश्रुत संहिता में रोगों के भेदानुसार रक्त को चौथा दोष स्वीकार कर सकते हैं। शाङ्र्गधर संहिता और अन्य आयुर्वेद ग्रंथों में रोगों की गणना में रक्त पित्त, वातरक्त आदि नामों में दोषों के साथ रक्त को भी जोड़ा गया है ।

रक्त को दोषों के साथ जोड़ने से उसे इनके समान ही महत्त्व प्राप्त होता है। इन सभी शंकाओं का समाधान करते हुए आगे बताते हैं कि रक्त को दोषों की श्रेणी में क्यों नहीं रख सकते। शाङ्र्गधर के अनुसार रक्त को 'शरीर धारक' बताने से उसका संबंध धातुओं के साथ रक्त की महत्ता बताना है। शाङ्र्गधरानुसार दोष तीन ही स्वीकार्य हैं यदि रक्त को चौथा दोष मानते तो उसका स्पष्ट रूप से वर्णन करते ।सुश्रुत संहिता में **"एभि एव शोणित चतुर्थे"**।

इस संदर्भानुसार ने यह सिद्ध किया कि रक्त को चौथा दोष मानना चाहिए परंतु रक्त को वात, पित्त, कफ के साथ उल्लेखित करने से केवल उसकी महत्ता स्पष्ट होती है। रक्त को दोष इसलिए स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि शरीर की उत्पत्ति का कारण वात, पित्त, कफ है। जो अधोभाग, मध्य भाग और ऊपरीभाग में स्थिर रहते हैं। जो तीन खंभों के समान है, विकृत होने पर ये त्रिदोष शरीर को नष्ट कर देते हैं। चंद्रमा ,सूर्य और वायु ये तीनों विक्षेप, आदान एवं विसर्ग के कार्यों को करते हुए जगत को धारण करते हैं, उसी प्रकार त्रिदोष शरीर का कार्य सुचारू रूप से करते हैं। इसलिए रक्त को चौथा दोष स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि उसका कोई कार्य दृष्टव्य नहीं है।

"विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगदेहं कफपित्तानिलास्तथा।।"

सुश्रुत के व्रण प्रश्नाध्याय में रक्त का वर्णन दोषों के साथ किया गया है लेकिन रक्त को दोष की श्रेणी में नहीं रखा गया है। क्योंकि रक्त के साथ शुक्र, ओज आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

महर्षि सुश्रुत ने रसधातु के समान ही रक्त को भी धातु माना है दोष नहीं। प्रकृति के निर्माण में रक्त का योगदान न होने के कारण रक्त को दोष रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।
वाग्भट ने भी दोष तीन ही माने हैं।
भावप्रकाशकार द्वारा भी वात, पित्त, और कफ को ही दोष माना है।

दोषों की विशेषता यह है कि भी वे मानव प्रकृति के जनक हैं गर्माधान के समय शुक्र-शोणित संयोग के समय जिस दोब की प्रधानता होती है उसी के अनुरूप गर्भस्थ शिशु की प्रकृति का निर्माण होता है। प्रकृति के अनुरूप ही शिशु के शरीर और मन विकास होता है ।वहीं रक्त में मानव प्रकृति के निर्माण की विशेषता नहीं पाई जाती।

दोष शरीर को स्वस्थ एवं अस्वस्थ रखते हैं लेकिन रक्त शरीर को स्वस्थ रख सकता है अगर दोष साम्य अवस्था में रहे तो अन्यथा नहीं , परन्तु रक्त शुद्ध होने पर भी व्यक्ति स्वस्थ नहीं रहेगा क्योंकि दोष साम्यावस्था में नहीं है। उपर्युक्त विशेषताओं के कारण रक्त को चौथा दोष नहीं माना गया है

उपसंहार

आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत शाङ्र्गधर संहिता में रक्त दोष की अवधारणा का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है शाङ्गधर संहितानुसार रक्त को पोषक तत्व के रूप में बताया गया है साथ ही स्वास्थ्य के संतुलन का आधार भी माना है। रक्त के दूषित होने पर अनेक रोग उत्पन्न होते हैं यथा पित्तजन्य रोग, सूजन, त्वचा संबंधी विकार तथा अन्य विकृतियाँ।

रक्त दोष के लिए अधिक तिक्त, अम्ल, लवणीय आहार विहार का असंतुलिकरण, उष्ण पदार्थ का सेवन एवं खराब दिनचर्या को हेतु बताया गया है ।

शाङ्र्गधर संहिता में रक्त दोष के उपचार को सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है। रोगों का शोधन व शमन का उल्लेख प्राप्त होता है। इन सभी के अतिरिक्त औषध सृजन का वर्णन है जिसके द्वारा रक्त शुद्धिकरण के लिए क्वाथ, चूर्ण, घृतादि का निर्माण किया जाता है। अंततः शाङ्र्गधर संहिता के रक्त दोष की अवधारणा केवल रोग का नहीं अपितु उसके लक्षण, कारण, निदान एवं चिकित्सा का सम्पूर्ण दृष्टिगत अध्ययन प्रस्तुत करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अष्टांगहृदयम, आचार्य वाग्भट व्याख्या हरिनारायण शर्मा प्रकाशन एवं संस्कृरण हरिनारायण शर्मा वैद्य
2. अथर्ववेद, जयदेव शर्मा आर्य साहित्य मंडल अजमेर संस्करण 2022
3. चरक संहिता, आचार्य अग्निवेश चरक प्रति संस्कर्ता व्याख्या पं. काशीनाथ, चौखम्बा विद्याभवन
4. छान्दोग्योपनिषद्, शांकरभाष्य, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण 2019
5. त्रिदोष विज्ञान, कविराज उपेन्द्रनाथ दास भिषगाचार्यण टीका-जयदेव विद्यालंकार, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, नवम् संस्करण 1975
6. प्राकृतदोष विज्ञान , वैद्य निरंजनदेव आयुर्वेदालंकार, आयुर्वेद एवं यूनानी' तिब्बती अकादमी लखनऊ प्रथम संस्करण 1971
7. माधव निदान आचार्य माधव, टीका सुदर्शन शास्त्री चौखम्बा संस्कृत संस्थान, जड़ाव भवन के. 37/116 गोपाल मन्दिर लेन वाराणसी
8. शाङ्र्गधर संहिता, आचार्य शाङ्गधर दीपिका टीका काशीराम वैद्य पं. परशुराम द्वारा संशोधित निर्णय सागर बम्बई, संस्करण द्वितीय
9. आयुर्वेद का इतिहास-शाङ्गधर काल निर्धारण
10. शाङ्गधर संहित, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस वाराणसी संस्करण 2012
11. शाङ्गधर संहिता, हिन्दी टीका सहित चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 2018
12. शाङ्र्गधर संहिता , संपादक पं. परशुराम शास्त्री/बह्मानन्द त्रिपाठी-चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस वाराणसी
13. अमरकोश चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस वाराणसी 2012
14. वैद्यक शब्दावली CCRS New Delhi 2013
15. वैद्यक, शब्द सिंधु चीखम्बा संस्कृत प्रतिष्णन वाराणसी 2009
16. आयुर्वेद महाकोश, चौखम्बा ओरिएण्टालिया 2011अ